विश्व का प्राचीनतम धर्म

❑ मेघराज जैन

जैन धर्म विश्व का सबसे प्राचीनतम धर्म है इसमें किञ्चित् मात्र भी संशय की गुंजाइश नहीं है। तथापि प्रश्न समुपस्थित होता है कि इसके संस्थापक कौन थे? भगवान महावीर, भगवान पार्श्व या भगवान ऋषभदेव विविध विद्वानों के उद्धरणों से इस विषय को स्पष्ट कर रहे हैं – श्री मेघराजजी जैन। – संपादक

जैनधर्म विश्व के प्रमुख एवं प्राचीन धर्मों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बीसवीं शती के प्रथम चरण पर्यंत अनेक पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वान् इस धर्म को हिन्दू धर्म की एक सुधारवादी शाखा के रूप में ही स्वीकार करते थे। इसकी ऐतिहासिकता को भी श्रमण महावीर से अधिक प्राचीन नहीं मानते थे। किन्तु आज ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यों के फलस्वरूप अनेक प्रामाणिक परिणाम सामने आये हैं जो जैन धर्म को प्राचीनतम परम्परा के रूप में प्रतिपादित करते हैं।

प्राच्य विद्याओं के विश्वविख्यात अनुसंधाता डॉ. हर्मन याकोबी ने जैन सूत्रों की व्याख्या में जैनधर्म की प्राचीनता पर पर्याप्त ठोस प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। **'इस तथ्य से अब सब सहमत है कि वर्धमान, बुद्ध के समकालीन थे। बौद्ध ग्रंथों में इस बात के प्रमाण है कि वर्धमान, बुद्ध के समकालीन थे। स्वयं बौद्ध ग्रंथों में इस बात के प्रमाण हैं कि श्रमण महावीर से पूर्व जैन या अर्हत् धर्म विद्यमान था। परन्तु महावीर इसके संस्थापक थे ऐसा कोई भी उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में प्राप्त नहीं होता।.....**

पार्श्वनाथ जैनधर्म के संस्थापक थे, इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। जैन परम्परा प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव को जैनधर्म का संस्थापक मानने में एकमत है।"..... विश्वविख्यात दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन् ने भी अपनी प्रख्यात पुस्तक 'भारतीय दर्शन' में स्पष्ट लिखा है – निस्संदेह जैन धर्म वर्धमान और पार्श्वनाथ से भी पहले प्रचलित था। यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ, और अरिष्टनेमि तीर्थंकरों के नामों का निर्देश है। भागवत-पुराण द्वारा भी इस बात का समर्थन होता है कि ऋषभदेव जैन धर्म के संस्थापक थे।"

शरद कुमार साधक के शब्दों में – "आम धारणा है कि वेद संसार के सबसे प्राचीन धर्म ग्रंथ हैं। पर वेदों में जो अंतर्विरोधी धर्मतत्त्व प्रतिपादित हैं, वे उनसे भी पूर्ववर्ती धार्मिक अवधारणाओं की पुष्टि करते हैं। उन अवधारणाओं के प्रवक्ता व्रात्य थे। व्रात्य संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति मानी जाती है। महाव्रात्य ऋषभदेव की चर्चा प्राचीन ग्रंथों में होने का अर्थ ही है कि वेद काल में ऋषभदेव लोक श्रद्धा के केन्द्र बन चुके थे। उनसे पूर्व हुए व्रात्यों तक पहुँचाने में सहायक है – जैन तीर्थंकरों की पिछली चौबीसी। वर्तमान चौबीसी में ऋषभदेव पहले तीर्थंकर है और महावीर चौबीसवें, किन्तु इन चौबीस तीर्थंकरों से पहले हुए चौबीस व्रात्यों की प्रतिमाएँ कच्छ (गुजरात) में निर्मित ७२ जिनालयों में विद्यमान हैं।"

भारत की प्राचीन श्रमण संस्कृति तथा अध्यात्म-प्रधान महान् मागध धर्म के सजीव सतेज प्रतिनिधि के रूप में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति का भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृतियों में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के दार्शनिक चिंतन, धार्मिक, इतिहास एवं सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। दूसरी शती ईस्वी के **आचार्य समन्तभद्र के शब्दों में** – "महावीर प्रभृति श्रमण तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं प्रचारित यह सर्वोदय तीर्थ मानव मात्र का उन्नायक एवं कल्याण कर्ता है।"

डॉ. रवीन्द्र कुमार जैन के अनुसार – "ऋग्वेद में वातरशना मुनियों और केशी से सम्बन्धित कथाएँ भी जैनधर्म की प्रागैतिहासिक प्राचीनता का पुष्कल प्रमाण प्रस्तुत करती है। ऋषभदेव और केशी का साथ-साथ उल्लेख भी इसी प्राचीनता का द्योतक है। वैदिक साहित्य में मुनियों के साथ यतियों और व्रात्यों का वर्णन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। ये तीनों मूलतः श्रमण परम्परा के ही हैं। इनके आचरण और स्वभाव में तथा वैदिक ऋषियों के सामान्य स्वभाव और आचरण में जो व्यापक अन्तर है, वह सहज ही स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। आहार, तप और यज्ञादि की हिंसात्मक या शिथिल प्रवृत्ति में श्रमण साधु विश्वास नहीं रखते थे। वे स्वभावतः अधिक शांत और संयमी थे।

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के अनुसार – "जैन परम्परा के मूल स्रोत प्रागैतिहासिक पाषाण एवं धातु पाषाण युगीन आदिम मानव सभ्यताओं की जीववाद (एनिमिज्म) प्रभृति मान्यताओं में खोजे गए हैं। सिंधु उपत्यका में जिस धातु/लोह युगीन प्राग्ऐतिहासिक नागरिक सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं उसके अध्ययन से एक संभावित निष्कर्ष यह निकाला गया है कि उस काल और क्षेत्र में वृषभ लांछन दिगम्बर योगीराज ऋषभ की पूजा-उपासना प्रचलित थी। उक्त सिंधु सभ्यता को प्राग्वैदिक एवं आर्य ही नहीं, प्रागार्य भी मान्य किया जाता है, और इसी कारण सुविधा के लिए बहुधा द्राविडीय संस्कृति की संज्ञा दी जाती है।"

'विश्वधर्म' पुस्तक में **आचार्य सुशीलमुनि जी ने जैन धर्म का परिचय देते हुए लिखा है** – "आदि युग जितना प्राचीन है, उतना ही अज्ञात भी है। सभ्यता के स्वर्ण विहान का शुभ अरुणोदय यदि आदि दिवस मान लिया जाय तो उसी दिन जैनत्व अस्तित्व में आया। उसका लालन-पालन ऋषभ ने किया और असि, मसि, कृषि के साथ प्राणि विज्ञान दिया। उनसे वैदिक संस्कृति ने जन्म नहीं तो स्वरूप अवश्य प्राप्त किया। श्रमण संस्कृति के तो वे आदि पुरुष ही है। कर्म और ज्ञान योग के सफल व्याख्याकार और जैन तीर्थंकर होना ही उनकी इतिमत्ता नहीं है, अपितु उनकी महत्ता तो आदि धर्म के मूलाधार समूची आर्य जाति के उपास्य तथा समूचे विश्व के प्राचीनतम व्यवस्थाकार होने में है।"

आचार्य सुशील मुनि जी ने अपनी पुस्तक 'इतिहास के अनावृत पृष्ठ' में जैन धर्म की ऐतिहासिक खोज विषयक शोध सामग्री प्रस्तुत की है। जिसमें अनाग्रहभाव से अतीत को देखा और खोजा है। इस पुस्तक से पाठकों को एक तलस्पर्शी दृष्टि निश्चित रूप से प्राप्त होगी। देखिए पुस्तक का एक अंश – 'प्रश्न उठ सकता है कि विश्व के विराट् प्रांगण में वैचारिक क्रांति के जन्मदाता और मानवीय मर्यादाओं के व्यवस्थापक कौन है ? यद्यपि प्राचीनता का व्यामोह रखना विशेष अर्थ नहीं रखता क्योंकि श्रेष्ठता और उच्चता प्राचीनता से नहीं आ सकती तो भी ऐतिहासिक दृष्टि से होने वाली खोज का महत्व है। मेरा मानना है कि वेद किसी एक परम्परा की निधि नहीं है और न ही वेदों में कोई एक ही विचार-व्यवस्था है। कहीं यज्ञ समर्थक मंत्र है, कहीं यज्ञ-विरोधी। एकदेव, बहुदेव और बहुदेवों में एकत्व की प्रतीति कराने वाली तात्त्विक पृष्ठभूमि वेद-विहित होने से ही उनमें यम, मातरिश्वा, वरुण, वैश्वानर, रुद्र, इन्द्र आदि नाना देवों का स्थान है।

वेदों से ब्राह्मण धर्म का बोध कराना, वेदों के विविधमुखी दृष्टिकोणों एवं आर्य-अनार्य ऋषियों के विभिन्न विचारों का अपमान करना है। क्योंकि वेद भारत की समस्त विभूतियों, संतों, ऋषियों मुनियों, मनीषियों की पुनीत वाणी का संग्रह है। यही कारण है कि श्रमणों ने अन्य ग्रंथों का निर्माण नहीं किया। सबके विचारों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकलन, वेदों में हो जाने से यज्ञपरक भाग से ब्राह्मणों का तथा त्यागपरक भाग से श्रमणों का समाधान होता रहा। जैन विचारकों का मत है कि भले ही आज वेद ब्राह्मण धर्म के ग्रंथ हो गये हैं लेकिन वे बहुत वर्षों तक श्रमण संस्कृति के भी आधार ग्रंथ रहे हैं जिनमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की वाणी संकलित है। उन्हें महाव्रात्य कहा जाता था। वेद में ऋषभवाणी का समावेश हो जाने से सिद्ध हो जाता है कि व्रात्य वेदों से भी प्राचीन है।"

व्रात्य भारत का प्रातीनतम सम्प्रदाय है। उसका प्रादुर्भाव वेदों के निर्माण से पूर्व और संभवतः आर्यों के आगमन से पहले हो चुका था। वेद में व्रात्य, द्रविड़, दास, दस्यु, पणि, किरात और निषादादि शब्दों का उल्लेख है। उन्हें सम-समानार्थक तो नहीं कहा जा सकता हाँ, व्रात्यों के प्रभाव से आयी हुई प्राचीन जातियाँ अवश्य माना जा सकता है।

वेद में व्रात्य को परमेश्वर, आत्मद्रष्टा मुनि के रूप में चित्रित किया गया है। वह अक्षरशः जैन तीर्थंकर का वर्णन है किन्तु स्मृति-युग में व्रात्य को निन्दित बताया गया। सम्भव है कि उस समय श्रमण ब्राह्मणों में एक दूसरे का विरोध करने का वातावरण बन गया हो। उसका प्रभाव व्याकरणकार पर भी पड़ा है। जैन शास्त्रों में अरिहंतों का श्रावकों के प्रति (मनुष्य के लिए) गौरवमय उच्चारण **"देवानुप्रिय"** रहा, जिसका सामान्य अर्थ देवताओं से भी अधिक प्यारा लगने वाला मानव होता है किन्तु पाणिनीय व्याकरण में **'देवा न प्रिय'** का अर्थ मूर्ख किया गया और अहि-नकुल, मार्जर-मूषक की भांति श्रमण-ब्राह्मणों को जन्मजात बैरी बता दिया गया।

व्रती का लक्ष्य एकमात्र आत्म-साक्षात्कार अन्तर्नाद और परमात्मपद प्राप्ति है और याज्ञिक का ध्येय स्वर्ग तथा लोकैषणा प्राप्ति के लिए अनुष्ठान और सोमपान की ओर प्रवृत्त होना है। व्रात्य पशुओं का वध यज्ञ में होता नहीं देख सकते थे और अहिंसा की स्थापना करना चाहते थे इसीलिए पशुवध रोकने के कारण याज्ञिक उन्हें विघ्नकर्ता अनार्य, असुर, म्लेच्छ कहा करते थे। व्रात्य भौतिक देवताओं को न मानने से 'अदेवयु', यज्ञ विरोधी होने से अयज्वन, अन्यव्रत, अकर्मन् आदि नामों से पुकारे जाते थे।

व्रात्यों और ब्राह्मणों का विकास-क्रम जानने के लिए हमें अतीत के उस पाषाणयुग और धातुयुग में जाना पड़ेगा जहाँ 'मोहनजोदड़ो' और 'हड़प्पा' की सैन्धव और व्रात्य सभ्यता की जन्म कहानी शिलांकित की गई है। तक्षशिला, मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, मथुरा के टीलों से मिले शिलालेख, उड़ीसा की हाथीगुफा से प्राप्त खारवेल के शिलालेख, उज्जैन की प्राचीनतम प्रस्तर कृतियाँ देखें तो उनमें मुनियों को, ऋषभदेव की धार्मिक सभा को, उपदेशों को अधिक व्यापक सर्वजाति और सर्वजीव समानत्व के लिए उकेरा गया है। इससे भी प्रमाणित होता है कि आर्यों के आने से पूर्व भारतवर्ष में द्राविड़ों और आग्नेयों का पर्याप्त विकास हो चुका था।

भारतीय रहस्यवाद के विकास की पृष्ठभूमि और उसमें साधुसंस्था के योगदान का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए **भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के पूर्व महानिदेशक श्री एम.एन. देशपांडे** इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे – "भारत में साधुवृत्ति अत्यन्त पुरातन काल से चली आ रही है और जैन मुनि चर्या के जो आदर्श ऋषभदेव ने प्रस्तुत किये वे ब्राह्मण परम्परा से अत्यन्त भिन्न हैं। यह भिन्नता उपनिषद्काल में और भी मुखर हो उठती है। उपनिषदों की मूल भावना की संतोषजनक व्याख्या केवल तभी संभव है जब इस प्रकार सांसारिक बंधनों के परित्याग और गृहविरत भ्रमणशील जीवन को अपनाने वाली मुनिचर्या के अतिरिक्त प्रभाव को स्वीकार कर लिया जाय। भारतीय धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सृष्टि के आरम्भ में मानव जाति के लिए ऋषभदेव जी ने विशेष पुरूषार्थ किया था। विवाह व्यवस्था, पाक शास्त्र,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणित, लेखन आदि संस्कृति के बीज ऋषभदेव ने समाज में बोये। यह निर्विवाद है कि ऋषभ को समझे विना भारतीय संस्कृति के प्रारम्भ विन्दु को नहीं समझा जा सकता।"

'णाणसायर' जैन शोध की एक महत्वपूर्ण त्रैमासिकी है। इसके ऋषभ अंक में संकलित डॉ. प्रेमसागर जैन का **'सिंधु घाटी में ऋषभ युग'** का एक अंश –

"सर वेल्स के अनुसार भारत में आर्यों के आने से पूर्व एक सभ्यता थी, जो भूमध्य सागर में, सुदूर दक्षिण-पूर्व जावा तक विस्तृत थी। इसे विदेशी सभ्यता कह सकते हैं क्योंकि इसमें जितने लक्षण थे, वे सब भारत के द्राविड़ों में प्राप्त होते हैं। अतः यह भारतीय सभ्यता थी जो ईसा के चार हजार वर्ष पूर्व समृद्धि को प्राप्त हुई।

मुण्डा आदिवासियों की अपनी सभ्यता थी। उसका समय भी विद्वानों ने ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व कहा है। मुण्डा आदिवासी वर्मा से कम्बोडिया और वियतनाम होते हुए भारत में आये थे। ईसा से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व जब आर्य भारत में आये तो उन्होंने मुण्डा आदिवासियों को देखा था। इनकी मुण्डरी भाषा थी। इसमें प्राकृत शब्द अधिक हैं। मुण्डा आदिवासी जिन पवित्र आत्माओं पर विश्वास करते हैं, उनमें औरतों की आत्माएँ भी शामिल हैं।"

मौलाना सुलेमान नदवी ने अपने ग्रंथ – **"भारत और अरब** के सम्बन्ध में लिखा है कि समनियन और कैलिड्यन दो ही धर्म थे। समनियन नग्न रहते थे और पूर्व देश के थे। खुरासान देश के लोग इन्हें शमनान या श्रमन कहते थे। ह्वेनसांग ने श्रमणेरस (shramneras) का उल्लेख किया है। अरबी कवि और तत्त्ववेत्ता अबु-ल-अला (९७३-१०५८) की रचनाओं में जैनत्व का पोषण है। वे शाकाहारी थे और दूध और मधु सेवन भी अधर्म मानते थे।

फर्ग्युसिन ने अपनी पुस्तक **'विश्व की दृष्टि में'** (पृष्ठ २६ से ५२) में लिखा है कि ऋषभ की परम्परा अरब में थी और अरब में स्थित पोदनपुर जैनधर्म का गढ़ था। इस्लाम के कलंदरी सम्प्रदाय के लोग जैनधर्म के सिद्धांतों से साम्य रखते हैं, वे आदिमानव सभ्यता के प्रवाह को सूचित करते हैं। साइवेरिया के पुरातात्विक उत्खनन में नरकंकाल २० से २५ फुट तक के निकले है जिन्हें एक करोड़ चालीस लाख वर्ष पहले का माना जाता है।

डॉ. ज्योति प्रासद जैन ने "जैन ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि' निबंध में कहा है – "तीर्थंकर ऋषभ का ज्येष्ठ पुत्र भरत ही इस देश का सर्वप्रथम चक्रवर्ती सम्राट् था और इसी के नाम पर यह देश भारत या भारतवर्ष कहलाया। यह जैन पौराणिक अनुश्रुति भी वैदिक साहित्य एवं ब्रासणीय पुराणों से समर्थित है। ऋषभ के उपरान्त समय-समय पर २३ अन्य तीर्थंकर हुए जिन्होंने उनके सदाचार प्रधान योगकर्म का पुनः पुनः प्रचार किया और जैन संस्कृति का पोषण किया। बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थ में अयोध्यापति रामचन्द्र हुए, जिन्होंने श्रमण-ब्राह्मण उभय संस्कृतियों के समन्वय का भगीरथ प्रयास किया। इक्कीसवें तीर्थंकर नमि विदेह के जनकों के पूर्वज मिथिला नरेश थे जो उस आध्यात्मिक परम्परा के सम्भवतया आद्य प्रस्तोता थे, जिसने जनकों के प्रश्रय में औपनिषदिक आत्मविद्या के रूप में विकास किया। बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि नारायण कृष्ण के ताऊजात भाई थे। दोनों ही जैन परम्परा के शलाका पुरुष हैं। अरिष्टनेमि ने श्रमणधर्म पुनरुत्थान का नेतृत्व किया तो कृष्ण ने उभय परम्पराओं के समन्वय का स्तुत्य प्रयत्न किया। तेइसवें तीर्थंकर पार्श्व (८७७-७७७ ई.पू.) काशी के उरगवंशी क्षत्रिय राजकुमार थे और श्रमणधर्म पुनरुत्थान आंदोलन के सर्वमहान् नेता थे। उनका चातुर्याम धर्म प्रसिद्ध है। सम्भवतया इसी कारण अनेक आधुनिक इतिहासकारों ने तीर्थंकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्व को ही जैनधर्म का प्रवर्तक मान लिया। अंतिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर, बौद्ध साहित्य में जिनका **'निगंठ नातपुत्त'** (निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र) के नाम से उल्लेख हुआ है का जीवन काल ५६६-५२७ ई.पू. है। महावीर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्रमण पुनरुत्थान आंदोलन पूर्णतया निष्पन्न हुआ, इसका अधिकांश श्रेय महावीर को है।"

निष्कर्षत : माना जा सकता है कि जैनधर्म विश्व का प्राचीनतम धर्म है। चाहे उस समय अथवा अंतराल में उसका नाम जो भी रहा है। इस विषय पर शोध, आज की महती आवश्यकता है। जिससे आधुनिक इतिहासकारों की भ्रामक मान्यताओं का उन्मूलन किया जा सके। जो इतिहास के शोध-छात्र इस क्षेत्र में कार्य करना चाहते हैं उनका सदैव स्वागत है।

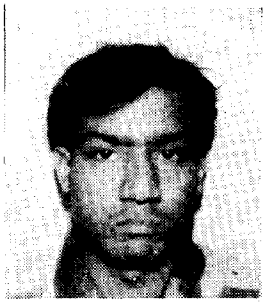

❑ **श्री मेघराज जी जैन का जन्म १८ अगस्त १९१८ को दिल्ली में हुआ। दिल्ली विश्वविद्यालय से बी. कॉम. की शिक्षा प्राप्त की तदनन्तर प्रकाशन-व्यवसाय में संलग्न हो गये। आपकी जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार में विशेष अभिरुचि है। आप वर्तमान में केलादेवी सुमति प्रसाद ट्रस्ट, दिल्ली के सचिव हैं।**

— सम्पादक

वैराग्य उसी का सफल है जिसे आत्मा का ज्ञान है। आत्मज्ञान के बिना वैराग्य शून्य है, ऊपरी वैराग्य का कोई महत्व नहीं है। जिस प्रकार किसी ने भोजन छोड़ा, वस्त्र त्याग दिये और कई प्रकार की उपभोग क्रियाएँ त्याग दी लेकिन आत्मज्ञान नहीं, तो उसका प्रभाव किस पर पड़ने वाला है? किसी पर भी नहीं ! आत्मज्ञान के बिना, किया गया त्याग, वह तो देह का कष्ट हो जाएगा। त्याग ज्ञान पूर्वक करना चाहिए। वहीं निर्जरा का कारण बनेगा, उसीसे सकाम निर्जरा होगी कर्म की। अन्यथा बालकर्म या अज्ञान कर्म ही कहलाएगा, अतः विराग के साथ ज्ञान होना अति आवश्यक है।

— सुमन वचनामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org